अर्जन

(तृतीय सर्ग)

विधाता छन्द

चले जब द्रोण आश्रम से विरोधी भाव थे मन में ।
करे अनुभूत ऐसे क्षण प्रथम ही बार जीवन में ।
हुई सम्पन्न शिक्षा सोच यह सन्तोष होता थाा ।
दूर हैं तीर्थ[1] होते सोच यह उर धैर्य खोता था ।।०१।।

पुनः होगी जनक से भेंट मानस हृष्ट होता था ।
पुनः गुरु जननि के वात्सल्य से आकृष्ट होता था ।
मिलेगी अब कहाँ वात्सल्य-प्रतिमा मूर्ति ममता की ।
वहे लोचन विसारी शास्त्र - सम्मत वात समता की ।।०२।।

न कुछ बोली रखा वस हाथ शिर पर काँपता अपना ।
विलोचन पौंछ बालक के ढँका पट से वदन अपना ।
कहा हे वत्स! अपने स्वास्थ्य का कुछ ध्यान तुम रखना ।
तपस्या उग्र मत करना न लंवे व्रत कभी रखना ।।०३।।

कहा गुरू ने कि मंगल हो तुम्हारी कीर्ति हो जग में ।
हुए सक्षम बढ़ो अब विश्व के बहुकण्टकित मग में ।
किया जो ज्ञान अर्जित उसे जीवन में उतारो तुम ।
धनुर्विद्या उपेक्षित हो चली फिर से उबारो तुम ।।०४।।

जितेन्द्रिय हो, रहो निष्काम, निर्भय धर्म को पालो ।
न कल पर वत्स होकर अलस तुम कर्तव्य को टालो ।
बनाना राम को आदर्श दुष्कृत[2] को मिटाने में ।
न देना साथ नृप का भी कभी दुर्बल सताने में ।।०५।।

सदा तुम ज्ञान कौशल को लगाना लोक हित में ही ।
न ऋत को छोड़ना आएं सुदारुण कष्ट कितने भी ।
न तृष्णा वित्त की मत लोभ पद का वत्स तुम करना ।
सदा ही पक्ष लेना नीति का धर्मार्थ धनु धरना ।।०६।।

चले ले ज्ञान का धन आशिषों की अतुल निधि लेकर।
करी अर्जित विनय से अचल श्रद्धा पूर्णतः देकर ।
लगे मृग वत्स मुड़कर देखने उनको प्लवङ्गम भी ।
विदाई दे रहे थे द्रोण को आश्रम विहंगम भी ।।०७।।

गए निर्जन सरणि[३] से द्रोण पहुँचे जनक आश्रम में ।
वहाँ पाया पिता को निरत अविरल साधना क्रम में ।
गयी हो कान्ति द्विगुणित देख स्नातक पुत्र को आता।
बड़े भी भाग्य से ऐसे तनय को मनुज है पाता ।।०८।।

उठाया चरणनत शिर को लगाया वक्ष से सत्वर[४] ।
हुए इतने बड़े तुम प्रकट ही यह काल है गत्वर[५] ।
हरो यह शून्यता चिर मौन मेरा भी अकेलापन ।
लगेगा और भी अब साधना में पुत्र मेरा मन ।।०९।।

गहन गोते लगाकर रत्न बहु अध्यात्म के खोजे ।
रहस्यों के सघन आवरण शंकर कृपा से खोले ।
सभी वे भेद कहने का बड़ा संकल्प था मन में ।
तुझे देकर करूँगा वृद्धि अपने ज्ञान के धन में ।।१०।।

करो हे वत्स! अब विश्राम पहले प्रयत[६] आश्रम में ।
लगा उपदेश दे करने अहो अभिवृद्धि में श्रम में ।
जनक हूँ स्नेह की मृदु मूर्ति जननी बन नहीं सकता ।
सुधा को प्रतिस्थापित मृदु रसायन कर नहीं सकता ।।११।।

लगे दिन वीतने सीखीं पिता से योग की विधियाँ ।
करीं हो प्रीत न्यौछावर तनय पर सिद्धि की निधियाँ ।
बने योगी महा अङ्गज[७] सदा मुनि की रही इच्छा ।
गहन वेदान्त दर्शन की मुदित देते उसे शिक्षा ।।१२।।

तनुजकृत साधना की प्रगति से सन्तोष था उनको ।
वहाँ निज देह के क्रमशः क्षरण से क्षोभ था मन को ।
कहा फिर एक दिन सुत से न अव यह देह रखना है ।
परम आनन्द चखना है परम सत्ता निरखना है ।।१३।।

तनय का म्लान होता मुख विलोका जब तपोनिधि ने ।
तुम्हें अव तक दिया कुछ भी न पुत्रक साधना विधि ने ।
क्या जाना शरीर कि यह अनुक्षण क्षीण होता है ।
जगत का अर्थ है गतिमान प्रतिपल रूप खोता है ।।१४।।

न अन्तर पड़, रहा कुछ भी, न होगा कुछ यहाँ नूतन ।
अनामय दिव्य चेतन हूँ अचेतन मृत्तिका-मय तन ।
सभी गुण धर्म हैं विपरीत शाश्वत भिन्नता इनकी ।
अनश्वर और गत्वर एकता दृढ़ अविद्या मन की ।।१५।।

किए मन इन्द्रियों ने चित्र जो नित चित्त पर अङ्कित ।
बनाते मुग्ध नर को वे मुदित दयनीय या शङ्कित ।
करण[८] परिमित जगत गतियुत अतः हैं चित्र भी झूठे ।
सुधी फिर कौन उनमें रमें होकर मुग्ध या रूठे ।।१६।।

मुझे यदि चाहते हो तो करो जीवन सफल अपना ।
जगो! पार्थक्य पार्थिव से विलोको तोड़ यह सपना ।
मिली यह देह केवल आत्म दर्शन के लिए जग में ।
बढ़ो हे वत्स! है आशीष मेरा सिद्धि के मग में ।।१७।।

हुए उपविष्ट आसन में किया फिर श्वास का नियमन ।
निवर्तित हो गए सारे करण लय प्राप्त था अब मन ।
लगा था ध्यान धूर्जटि[६] में धरा के ध्वस्त थे बन्धन ।
गया प्रभुधाम को हो ऊर्ध्वगामी धामयुत चेतन ।।१८।।

तमावृत हो गया दर्शन हुआ विज्ञान सब विस्मृत ।
उदधि ही शोक का संताप का था चतुर्दिक विस्तृत ।
तभी गम्भीर गरिमायुक्त ऋषिवर की गिरा गूँजी ।
गगन से मुक्त होती थी सुगोपित ज्ञान की पूँजी ।।१९।।

अकेला था सदा चेतन सदा रहता अकेला है।
जगत बस नभ फलक कल्पित चलित प्रतिविम्ब मेला है ।
कहाँ से दूसरा लाएं न है जब अन्य की सत्ता ।
समझ लो तत्व एकाकीपने का और गुणवत्ता ।।२०।।

गीतिका छन्द

सत्य साधन सर्वदा संसार में तव ध्येय हो ।
तेज धृति उत्साह संयमयुत चरित्र सुगेय हो ।
न्याय प्रियता के रहो प्रतिमान मान मिले सदा ।
द्रवित हो उर देख दुःख दीनार्त जन के सर्वदा ।।२१।।

मित्रता हो साधुजन से उपेक्षित दुर्जन रहे ।
श्रम कभी जाए न निष्फल मुदित निर्मल मन रहे ।
धारना समभाव सब प्रति मात्र गुण ही ग्राह्य हो ।
ज्ञान - वितरण - शील तुमको मात्र तप संग्राह्य हो ।।२२।।

पीयूष निर्झर

थे सखा अब वन्य प्राणी और द्विजगण ।
साधना-रत थे द्विजोत्तम धीर हर क्षण ।
हो रहा वर्धिष्णु तप का तेज सुखकर ।
देखते थे गगनचारी दृश्य रूककर ।।२१।।

सत्व गुण में स्नात सी सारी प्रकृति थी ।
दूर मन से हिंसकों के भी विकृति थी ।
दिव्य किरणें उतरती थीं द्रोण मन में ।
स्वर्ग सा आमोद विस्तृत था विजन में ।।२२।।

वर्ष त्रय की साधना में तरुण योगी ।
हो गया निष्णात ब्रह्मानन्द - भोगी ।
शस्त्र विद्याभ्यास भी प्रति प्रात होता ।
रेणुका-सुत-सम युवा ऋषि ज्ञात होता ।।२३।।

तरूण इन्दीवर सदृश थी देह आभा ।
और अम्बुज का नयन देते छलावा ।
दृष्टि थी निर्मल प्रशम[१०] की स्रोत जैसी ।
सारमय बाहें धरे करि हस्त जैसी ।।२४।।

था कमण्डलु हाथ में कटि हरिण छाला ।
वक्ष पर शोभित बड़ी रूद्राक्ष माला ।
मुञ्ज का उपवीत भाल त्रिपुण्ड शोभित ।
सिद्धियाँ वरने उन्हें नित थीं प्रलोभित ।।२५।।

उक्त चिह्नोंसे सुसिद्ध महर्षि लगते ।
किन्तु कार्मुक शरों से राजर्षि लगते ।
ज्ञान विक्रम का अलौकिक साधु सङ्गम ।
और गरिमा गिरिवरों सी किन्तु जङ्गम ।।२६।।

एक दिन स्वप्नस्थ थे तो पितर आए ।
कहा सुत! तेरे गुणों ने सुख बढ़ाए ।
किन्तु अब आदेश है ऐसा हमारा ।
करो ऐसा पुत्र देखे विश्व सारा ।।२७।।

जागकर दृढ़ द्रोण ने मन में विचारा ।
चाहते गुरु जन सदा शिव ही हमारा ।
अतः करनी पुत्र की अब प्राप्ति होगी ।
चलो गृहमेधी[11] बने यह शुष्क योगी ।।२८।।

और तब कुम्भज गये हास्तिनपुरी को ।
प्रमाणित कर निज चयन की चातुरी को ।
कर लिया परिणीत पावन गौतमी को ।
मिली जैसे भक्ति हो ज्ञानी यती हो ।।२९।।

थी मिली मन्दाकिनी ज्यों वारिनिधि से ।
भावना ज्यों मिल गयी दर्शन उदधि से ।
चन्द्रमा को मिली जैसे रोहिणी थी ।
हुई कुम्भज - संगिनी वह रोहिणी[12] थी ।।३०।।

लगा उठने उटज[13] से अब कोकिला रव ।
लोकचर्या ब्रह्मचर्या से जुड़ी नव ।
हो गया था मेल तप का साधना से ।
जुड़ गया विश्वास जैसे भावना से ।।३१।।

एक दिन परिहास में ऋषि ने कहा यों ।
अप्सरा सी तुम न रोको साधना क्यों ।
हुए हैं ऋषिवर कई तरूणी विडम्बित ।
हो न जाए तप हमारा भी विखण्डित ।।३२।।

अप्सरा को मानते तप विघ्नकारी ।
और मृदुता रूप से भयभीत भारी ।
तो सुनो मन पुरुष का अभियुक्त आधा ।
कौन सकता डाल यत मन में कुबाधा ।।३४।।

पाञ्च-भौतिक काय है जब एक जैसी ।
लालसा फिर देह की यति कहो कैसी ।
दिव्य द्युति ही देखता जो आत्मदर्शी ।
अन्य वपु में भी बने कैसे अमर्षी[१४] ।।३५।।

छोड़ना पाना किसे जब एक ही है ।
जगत माया तन्त्र [illegible] [illegible] ही है ।
शक्ति से युत हो सदा शिव में [illegible] तुम ।
तज विषमता साम्य पथ को ही गहो तुम ।।३६।।

हुए प्रमुदित सुन गिरा शारद्वती[१५] की ।
कान्ति द्विगुणित हो गयी तापस व्रती की ।
तत्व निर्णय तुम्हारा सुनकर सविस्मय ।
रह गया भद्रे न मन में और संशय ।।३७।।

अत्रि अनसूया सदृश वे राजते थे ।
देख सुख सुषमा सुराधिप लाजते थे ।
अरुन्धति[१६] सी मूर्ति वह शम की सुभद्रा ।
अधन-कामा हुई मानों लोपमुद्रा[१७] ।।३८।।

कालक्रम मे तपोनिधि के पुत्र जन्मा ।
थे अयोनिज युगल पर हर्षित अजन्मा[१८] ।
शब्द उच्चैः-श्रवा सा उसने उचारा ।
हुआ गुञ्जित भूमिमण्डल व्योम सारा ।।३९।।

सुनी सबने तब सविस्मय व्योमवाणी ।
उतर आया है धरा पर दिव्य प्राणी ।
अश्ववत है थाम[१९] वैसा नाम होगा ।
पुत्र यह ऋषि ज्ञाननिधि बलधाम होगा ।।४०।।

द्युतिमती मणि भाल में थी अति विचित्रा ।
चिकुर तट पर व्योम में ज्यों दीप्त चित्रा ।
पुष्ट थे अवयव मनोहर दीर्घ लोचन ।
हास्य था शिशु का अहा जन खेद मोचन ।।४१।।

और फिर हो गयी प्रचलित बाल लीला ।
हो गया वात्सल्य से आश्रम रसीला ।
श्रान्त शिशु को घेर लेती जब प्रमीला[२०] ।
कार्य गृह के कृपी करतीं स्नेहशीला ।।४२।।

घनाक्षरी

नींद में निमग्न पुत्र आनंन को देख-देख,
भाग्य को सराहतीं प्रसन्न हो कृपानुजा[२१] ।
रोदन के कारण बही जो रेख काजल की,
सूक्ष्म रूप धार आ गई हो जैसे भानुजा[२२] ।
पुत्र क्षेम माँगती है अद्रिजा[२३] से हाथ जोड़,
बाधित विकास को करे न शक्ति दानुजा[२४] ।
वत्स हो वलिष्ठ तेरा लाल हमारा भी बढ़े,
वत्सला रहो प्रभूत क्षीरिणी वृषानुजा[२५] ।।४३।।

सन्दर्भ सूची

१. गुरु, २. पाप, ३. मार्ग, ४. शीघ्र, ५. गतिमान, ६. पवित्र, ७. पुत्र, ८. इन्द्रियाँ, ९. शिव जी, १०. शान्ति, ११. गृहस्थ, १२. तरुणी, १३. कुटी, १४. असहिष्णु, १५. शरद्वान ऋषि की पुत्री कृपी, १६. वशिष्ठ ऋषि की पत्नी, १७. अगस्त्य ऋषि की पत्नी, १८. शिव, १९. बल, २०. निद्रा, २१. कृप की बहिन कृपी, २२. यमुना, २३. पार्वती, २४. आसुरी, २५. गाय।